नवाँ अध्याय

विजयनगर और बहमनियों का काल तथा पुर्तगालियों का आगमन

(लगभग 1350 ई. – 1565 ई.)

भारत के विंध्याचल से दक्षिण के प्रदेशों में 200 वर्षों से अधिक काल तक विजयनगर और बहमनी राज्यों का बोलबाला रहा। उन्होंने न केवल शानदार राजधानियों और नगरों का निर्माण कराया तथा उन्हें सुंदर इमारतों से सजाया एवं साहित्य-कला को प्रश्रय दिया, बल्कि बहुत बड़े क्षेत्रों में शांति-सुव्यवस्था भी कायम रखी तथा वाणिज्य-व्यापार और शिल्पों के विकास में योगदान किया। इस प्रकार जहाँ उत्तर भारत में विघटनकारी शक्तियों की धीरे-धीरे जीत हो रही थी, दक्षिण भारत एवं दकन में स्थिर सरकारों का एक लंबा दौर चला। इन सरकारों की समाप्ति पंद्रहवीं सदी के अंतिम चरण में बहमनी राज्य के विघटन और पचास साल से अधिक समय बाद 1565 ई. में बन्नीहट्टी की लड़ाई में विजयनगर की पराजय के साथ हुई। इस बीच भारतीय परिदृश्य बिलकुल बदल चुका था, जिसके दो मुख्य कारण थे। एक तो यह कि दक्षिणी भारत में आकर पुर्तगाली भारतीय समुद्रों पर अपना दबदबा कायम करने का प्रयत्न कर रहे थे और दूसरा यह कि उत्तर भारत में मुगलों का आगमन हो चुका था। मुगलों के आने से उत्तर भारत में एकीकरण के एक और दौर का रास्ता खुला तथा थल आधारित एशियाई शक्तियों और समुद्रों पर अपना दबदबा रखनेवाली यूरोपीय शक्तियों के बीच मुकाबले के एक लंबे युग का सूत्रपात हुआ।

विजयनगर साम्राज्य : स्थापना और बहमनी राज्य के संघर्ष

विजयनगर राज्य की स्थापना हरिहर और बुक्का नाम के दो भाइयों ने की, जिनके तीन और भाई थे। कथा के अनुसार ये दोनों वारंगल के काकतीय राजा के सामंत थे और बाद में कांपिली (आधुनिक कर्नाटक में) नामक राज्य में मंत्री बन गए। जब एक मुसलमान विद्रोही को शरण देने के कारण कांपिली पर मुहम्मद तुगलक ने आक्रमण करके उसे जीत लिया तो इन दोनों भाइयों को बंदी बनाकर इस्लाम में दीक्षित कर लिया गया तथा वहाँ विद्रोहियों से निबटने की जिम्मेदारी इन्हें सौंपी गई। मदुरै के मुसलमान सूबेदारों ने पहले ही

अपनी आज़ादी का ऐलान कर दिया था और मैसूर का होयसल शासक तथा वारंगल का राजा अपनी-अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। कुछ समय बाद इन दोनों भाइयों ने अपने नए स्वामी और नए धर्म - दोनों का त्याग कर दिया। अपने गुरु विद्यारण्य के निर्देश पर वे फिर से हिंदू धर्म में दीक्षित किए गए और उन्होंने विजयनगर में अपनी राजधानी स्थापित की।

हरिहर के सिंहासनारोहण का वर्ष 1336 ई. बताया जाता है। नवोदित राज्य को पहले मैसूर के होयसल राजा और मदुरै के सुल्तान से दो-दो हाथ करने पड़े। मदुरै का सुल्तान बहुत महत्वाकांक्षी था। एक लड़ाई में उसने होयसल शासक को हराकर बहुत ही नृशंसतापूर्वक उसे मार डाला। होयसल राज्य के विघटन से हरिहर और बुक्का को अपने छोटे से राज्य का विस्तार करने का अवसर मिला। 1346 ई. तक पूरा-का-पूरा होयसल राज्य विजयनगर के शासकों के हाथों में आ चुका था। इस संघर्ष में हरिहर और बुक्का की मदद उनके भाइयों ने भी की। उन्होंने विजित प्रदेशों के प्रशासन को सँभाला। इस प्रकार आरंभ में विजयनगर राज्य एक सहकारी राज्य-व्यवस्था (कोऑपरेटिव कॉमनवेल्थ) था। अपने भाई की मृत्यु होने पर 1356 ई. में बुक्का सिंहासन पर बैठा और उसने 1377 ई. तक राज्य किया।

विजयनगर साम्राज्य की बढ़ती हुई शक्ति ने स्वभावत: उसे उत्तर और दक्षिण की ताकतों के मुकाबले ला खड़ा किया। दक्षिण में उसके मुख्य प्रतिद्वंद्वी मदुरै के सुल्तान थे। विजयनगर और मदुरै के सुल्तानों के बीच संघर्ष लगभग चार दशकों तक चला। 1377 ई. तक मदुरै की सल्तनत लगभग मिट चुकी थी। अब विजयनगर साम्राज्य में पूरा दक्षिण भारत शामिल हो चुका था। दक्षिण में उसकी सीमा तमिल तथा चेर (केरल) देशों को समेटती हुई रामेश्वरम् तक पहुंचती थी। लेकिन उत्तर में विजयनगर का सामना एक बहुत ही प्रबल प्रतिद्वंद्वी से हुआ। यह था - बहमनी राज्य। इसकी स्थापना 1347 ई. में हुई थी। इसका संस्थापक जीवन में कुछ बनने की धुन लेकर साहसिक मार्ग पर निकला एक अफ़गान था जिसका नाम था अलाउद्दीन हसन। उसका उत्थान गंगू नामक एक ब्राह्मण की सेवा में रहते हुए हुआ। इसीलिए वह 'हसन गंगु' के नाम से जाना जाता है। गद्दीनशीन होने के बाद उसने अलाउद्दीन हसन बहमनशाह का खिताब अपनाया। कहते हैं कि वह अपने को अर्धमिथकीय ईरानी वीर पुरुष बहमन शाह का वंशज बताता था। लेकिन फरिश्ता द्वारा उल्लिखित एक लोक कथा के अनुसार उसने अपने ब्राह्मण संरक्षक के प्रति अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति के लिए अपना नाम बहमन शाह रखा था। जो भी हो, इसी खिताब के आधार पर उसका राज्य बहमनी राज्य कहलाया।

विजयनगर के शासकों तथा बहमनी सुल्तानों के हितों का टकराव तीन अलग-अलग क्षेत्रों में था - तुंगभद्रा के दोआब में, कृष्णा - गोदावरी के डेल्टा क्षेत्र में और मराठवाड़ा प्रदेश में। तुंगभद्रा दोआब कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच पड़ता था। इसकी समृद्धि तथा आर्थिक संपदाओं के कारण इससे पहले इसके लिए पश्चिमी चालुक्यों और चोलों के बीच और फिर यादवों तथा होयसलों के बीच संघर्ष चला था। कृष्णा-गोदावरी घाटी बहुत

उपजाऊ थी और अपने अनेक बंदरगाहों के कारण इस क्षेत्र के विदेश व्यापार पर इस घाटी का नियंत्रण था। इसके स्वामित्व के लिए चलनेवाला संघर्ष अक्सर तुंगभद्रा दोआब पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए चलनेवाली प्रतिद्वंद्विता से जुड़ा हुआ होता था। मराठा देश में मुख्य संघर्ष कोंकण और वहाँ तक पहुँचने का रास्ता देनेवाले प्रदेशों के लिए था। कोंकण पश्चिमी घाट और अरबसागर के बीच भूमि की एक पतली पट्टी है। यह पट्टी बहुत ही उपजाऊ थी और इसी में गोआ का बंदरगाह आता था जो इस क्षेत्र के उत्पादों के निर्यात और साथ ही ईरान और ईराक से घोड़ों के आयात का एक महत्वपूर्ण केंद्र था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भारत में अच्छी नस्लों के घोड़े नहीं होते थे, इसलिए गोआ के रास्ते घोड़ों का आयात दक्षिणी राज्यों के लिए बहुत महत्वपूर्ण था।

विजयनगर और बहमनी राज्य के बीच सैनिक संघर्ष आए दिन की बात बन चुके थे और जब तक इन दोनों राज्यों का अस्तित्व कायम रहा, ये संघर्ष भी चलते रहे। इन संघर्षों के फलस्वरूप विवादास्पद प्रदेशों में व्यापक तबाही और बर्बादी हुई। इनके साथ ही पास-पड़ोस के इलाकों को भी तबाह होना पड़ा तथा जान-माल की भारी क्षति झेलनी पड़ी। दोनों पक्षों ने नगरों को लूटा, गाँवों को जलाया, स्त्री-पुरुषों और बच्चों को पकड़कर गुलाम बनाकर बेचा एवं और भी तरह-तरह के बर्बरतापूर्ण कृत्य किए। उदाहरण के लिए जब प्रथम बुक्का ने 1367 ई. में विवादास्पद तुंगभद्रा दोआब में मुद्कल किले पर आक्रमण किया तो उसने वहाँ की रक्षावाहिनी के एक व्यक्ति को छोड़कर बाकी सबको मौत के घाट उतार दिया। जब यह समाचार बहमनी सुल्तान को मिला तो वह आगबबूला हो उठा और विजयनगर के खिलाफ कूच करते हुए रास्ते में उसने कसम खाई कि जब तक वह एक लाख हिन्दुओं को मौत के घाट नहीं उतार देगा, अपनी तलवार को म्यान में नहीं रखेगा। बरसात के मौसम और विजयनगर की सेना के प्रतिरोध के बावजूद उसने तुंगभद्रा को पार कर लिया। यह पहला अवसर था जब किसी बहमनी सुल्तान ने विजयनगर के प्रदेश में व्यक्तिगत रूप से पैर रखे हों। लड़ाई में विजयनगर का राजा पराजित हुआ और उसने भागकर जंगलों में शरण ली। इस लड़ाई में हमें पहली बार दोनों ओर से तोपों के इस्तेमाल की जानकारी मिलती है। बहमनी सुल्तान की जीत का श्रेय उसके बेहतर तोपखाने और घुड़सवार सेना को जाता है। लड़ाई कई महीने चलती रही लेकिन बहमनी सुल्तान न तो राजा को पकड़ पाया और न उसकी राजधानी पर कब्ज़ा कर सका। इस बीच स्त्री-पुरुषों और बच्चों का कत्लेआम चलता रहा। अंत में दोनों पक्षों ने थककर संधि करने का निश्चय किया। इस संधि के फलस्वरूप पुरानी स्थिति कायम हो गई जिसके अनुसार दोआब में दोनों पक्ष हिस्सेदार बन गए। इससे भी बड़ी बात यह हुई कि दोनों इस बात पर सहमत हो गए कि चूँकि इन राज्यों को दीर्घकाल तक एक-दूसरे के पड़ोसी के रूप में रहना है, इसलिए लड़ाई में नृशंसता से बचना ठीक होगा। अतः तय पाया गया कि आगे लड़ाई हुई तो असहाय और निहत्थी प्रजा को नहीं मारा जाएगा। कभी-कभी इस समझौते का उल्लंघन अवश्य हुआ, फिर भी इसने दक्षिण भारत में युद्ध को अधिक मानवीय बनाने में सहायता की।

मदुरै की सल्तनत को मिटाकर और दक्षिण भारत में अपनी स्थिति मज़बूत बनाकर द्वितीय हरिहर (1377 ई. - 1404 ई.) के अधीन विजयनगर साम्राज्य ने पूर्वी समुद्री तट की ओर प्रादेशिक विस्तार की नीति आरंभ की। इस क्षेत्र में कई छोटे-छोटे हिंदू राज्य थे जिनमें सबसे महत्वपूर्ण डेल्टा क्षेत्र के ऊपरी हिस्से के रेड्डी और कृष्णा-गोदावरी डेल्टा के निचले हिस्से में वारंगल के शासक थे। उत्तर में उड़ीसा के गंगा शासकों और साथ ही बहमनी सुल्तानों की भी इस क्षेत्र में रुचि थी। यद्यपि वारंगल के शासक ने दिल्ली के खिलाफ हसन गंगू की लड़ाई में उसकी मदद की थी, तथापि उसके उत्तराधिकारी ने वारंगल राज्य पर हमला करके कौलास के दुर्ग और गोलकुंडा के पहाड़ी किले पर कब्ज़ा कर लिया था। विजयनगर का राजा दक्षिण में इतना व्यस्त था कि इस संघर्ष में हस्तक्षेप करने का उसके पास अवकाश ही नहीं था। बहमनी सुल्तान ने गोलकुंडा को अपनी सल्तनत की सरहद तय कर दिया और वादा किया कि न तो स्वयं वह और न उसके उत्तराधिकारी भविष्य में वारंगल के किसी और प्रदेश पर अधिकार जमाएँगे। इस समझौते को पुख्ता करने के लिए वारंगल के राजा ने सुल्तान को एक रत्न मंडित सिंहासन भेंट किया था। कहते है, यह सिंहासन मूलतः मुहम्मद तुगलक को भेंट करने के लिए बनवाया गया था। बहमनी सल्तनत और वारंगल के बीच की यह संधि 50 वर्षों से अधिक समय तक कायम रही और यह तुंगभद्रा दोआब को जीतने या उस क्षेत्र में बहमनियों की आक्रामकता को शमित करने में विजयनगर के लिए एक बहुत बड़ी बाधा बनी रही।

विजयनगर और बहमनियों के बीच की लड़ाइयों का मध्यकालीन लेखकों ने विस्तार से वर्णन किया है। लेकिन वे हमारे लिए खास ऐतिहासिक महत्व के नहीं है। दोनों की स्थिति कमोबेश जैसी-की तैसी बनी रही और कभी एक का पलड़ा भारी पड़ता था तो कभी दूसरे का। हरिहर द्वितीय बहमनी-वारंगल गठजोड़ के मुकाबले अपनी स्थिति सुदृढ़ रखने में कामयाब रहा। लेकिन उसकी सबसे बड़ी कामयाबी यह थी कि उसने बहमनी राज्य से बेलगाम और गोआ छीन लिए। उसने उत्तर श्रीलंका पर भी आक्रमण किया।

हरिहर द्वितीय की मृत्यु के बाद कुछ समय की अनिश्चितता के उपरांत प्रथम देवराय (1406 ई. - 1422 ई.) सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके शासनकाल के आरंभ में ही तुंगभद्रा दोआब के लिए फिर भिड़त हुई। वह बहमनी सुल्तान से हार गया और लड़ाई के हर्जाने के तौर पर उसे सुल्तान को दस लाख हूण और बहुत से मोती तथा हाथी देने पड़े। उसे सुल्तान के साथ अपनी बेटी का विवाह करने पर भी राजी होना पड़ा और भविष्य में किसी प्रकार के विवाद की कोई गुंजाइश न रहने देने के लिए उसे दहेज के रूप में दोआब क्षेत्र में बांकापुर का इलाका बहमनियों को देना पड़ा। यह विवाह काफी तामझाम के साथ संपन्न हुआ। जब फिरोजशाह विवाह के लिए विजयनगर के निकट पहुँचा तो देवराय अपने पूरे लाव-लश्कर के साथ उसकी अगवानी करने के लिए नगर से बाहर आया। नगर के द्वार से लेकर राजमहल तक की दस किलोमीटर की दूरी तक सोने के काम किए मखमल, साटन और अन्य कीमती कपड़े बिछाए गए। दोनों राजा घोड़े पर सवार होकर साथ-साथ नगर के मैदान तक पहुँचे। इस शोभायात्रा में दोनों राजाओं के आगे-आगे देवराय के सगे-संबंधी पैदल चल रहे थे। यह उत्सव तीन दिनों तक चला।

दक्षिण भारत में यह इस तरह का पहला राजनीतिक विवाह नहीं था। इसके पूर्व गोंडवाना क्षेत्र में खरला के शासक ने शांति स्थापित करने के लिए फिरोजशाह के साथ अपनी बेटी की शादी कर दी थी। कहते हैं कि यह राजकुमारी फिरोज़ की खास चहेती रानी थी। लेकिन ये वैवाहिक संबंध अपने आप में शांति स्थापना का आधार नहीं बन पाए। कृष्णा-गोदावरी घाटी के प्रश्न पर विजयनगर, बहमनी सल्तनत और उड़ीसा के बीच फिर से संघर्ष आरंभ हो गया। इस बीच रेड्डियों के राज्य में गड़बड़ी फैल गई थी। इसका लाभ उठाकर देवराय ने इस राज्य को आपस में बाँट लेने के लिए वारंगल के साथ एक संधि की। वारंगल के बहमनियों को छोड़कर विजयनगर के साथ हो जाने से दकन में शक्ति संतुलन बदल गया। देवराय ने फिरोजशाह बहमनी को गहरी शिकस्त दी और कृष्णा नदी के मुहाने तक का उसका पूरा रेड्डी प्रदेश अपने साम्राज्य में मिला लिया।

प्रथम देवराय ने युद्ध में ही सफलता प्राप्त नहीं की, रचनात्मक कार्यों के क्षेत्र में भी उसने बहुत कुछ किया। उसने तुंगभद्रा पर एक बाँध बनवाया ताकि उसमें से नहरें निकालकर उन्हें राजधानी तक लाकर पानी की कमी दूर की जा सके। उनसे आसपास के खेतों की सिंचाई भी होती थी क्योंकि हमें ऐसी-जानकारी मिलती है कि इन नहरों के कारण उसके राजस्व में 3,50,000 'परदाओं' की वृद्धि हुई। सिंचाई के प्रयोजनों से उसने हरिद्रा नदी पर भी एक बाँध बनवाया।

कुछ अनिश्चितता के बाद द्वितीय देवराय (1422 ई.-1446 ई.) सिंहासन पर बैठा। उसे इस राजवंश का सबसे बड़ा शासक माना जाता है। सेना को मज़बूत बनाने के लिए उसने ज्यादा मुसलमानों को भरती किया। फरिश्ता के अनुसार द्वितीय देवराय को लगा कि बहमनी सेना की श्रेष्ठता का कारण उसके ज़्यादा मजबूत घोड़े और अधिक कुशल धनुर्धर है। इसलिए उसने 2007 मुसलमानों को भरती किया, उन्हें जागीरें दीं और सभी हिंदू सिपाहियों तथा अफसरों से उनसे धनुर्विद्या सीखने को कहा। विजयनगर की सेना में मुसलमानों की भरती कोई नई बात नहीं थी। कहते हैं, प्रथम देवराय की सेना में 10,000 मुसलमान थे। फरिश्ता बताता है कि 80,000 घुड़सवारों और 2,00,000 पैदल सैनिकों के अलावा द्वितीय देवराय ने 60,000 कुशल हिंदू धनुर्धारियों को भरती किया। ये आँकड़े शायद अतिरंजित हों परंतु बहुत बड़ी घुड़सवार सेना खड़ी करने का राज्य के संसाधनों पर बुरा असर पड़ा होगा क्योंकि अच्छी नस्लों के ज़्यादातर घोड़े विदेशों से मँगवाने पड़े होंगे। घोड़ों के अरब व्यापारी इन घोड़ों के बहुत ऊँचे दाम वसूल करते थे।

द्वितीय देवराय ने अपनी नई सेना के साथ 1443 ई. में तुंगभद्रा पार करके मुद्गल, बांकापुर आदि को, जो कृष्णा नदी के दक्षिण में पड़ते थे और जिन्हें बहमनी सुल्तान ने जीत लिया था, फिर से हासिल करने की कोशिश की। तीन ज़बर्दस्त लड़ाइयों के बाद आखिर दोनों पक्षों को पहले से मौजूद सीमाओं को ही स्वीकार करना पड़ा।

सोलहवीं सदी के पुर्तगाली लेखक नुनेज़ ने

मालूम होता है कि क्विलोन, श्रीलंका, पुलीकट, पेगू तथा तेनासरीम (बर्मा और मलाया में) देवराय द्वितीय को कर दिया करते थे। विजयनगर के राजा समुद्र में इतने शक्तिशाली थे कि वे पेगू और तेनासरीम से कर वसूल कर सकें, इसमें संदेह है। नुनिज़ का मतलब शायद यह था कि इन राज्यों के शासक विजय नगर के संपर्क में थे और उसकी सद्भावना प्राप्त करने के लिए उन्होंने उसे भेंट-उपहार और राजदूत भेजे थे। लेकिन श्रीलंका पर कई बार आक्रमण किए गए थे। यह काम शक्तिशाली नौसेना के बिना संभव नहीं था।

एक के बाद एक कई सुयोग्य शासकों के अधीन विजयनगर पंद्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में दक्षिण भारत के सबसे अधिक शक्तिशाली और समृद्ध राज्य के रूप में उभरा। इतालवी यात्री निकोलो कोंती 1420 ई. में विजयनगर आ गया था। वह अपने पीछे विजयनगर का बहुत सजीव वर्णन छोड़ गया है। कोंती कहता है "इस नगर की परिधि साठ मील है। इसकी दीवारें पहाड़ों तक चली गई हैं और इन पहाड़ों की तराई में पहुँचकर उन्होंने घाटियों के गिर्द घेरा बना दिया है। ... इस नगर में शस्त्र धारण करने योग्य नब्बे हजार लोगों के होने का अनुमान है। उनका राजा भारत के अन्य सभी राजाओं से अधिक शक्तिशाली है।" फरिश्ता भी कहता है, "बहमनी वंश के राजाओं ने केवल अपनी बहादुरी के बल पर अपनी श्रेष्ठता बनाए रखी क्योंकि शक्ति, संपत्ति और प्रादेशिक विस्तार की दृष्टि से बीजानगर (विजयनगर) के राजा उनसे आगे थे"।

फारसी यात्री अब्दुर्रज्ज़ाक ने भारत और दूसरे देशों की दूर-दूर की यात्रा की थी। द्वितीय देवराय के शासनकाल में वह विजयनगर पहुँचा था। उसने इस राज्य का जो वर्णन किया है उससे इसके वैभव का पता चलता है। उसका कहना है–"इस परवर्ती राजा के राज्य में तीन सौ बंदरगाह हैं जिनमें से प्रत्येक कालीकट के बराबर है और उसका प्रादेशिक विस्तार इतना अधिक है कि थलमार्ग से उसकी यात्रा पूरी करने में तीन महीनें लग जाते हैं"। सभी यात्रियों का कहना है कि यह देश घना आबाद था और यहाँ अनेक शहर तथा असंख्य गाँव थे। अब्दुर्रज्ज़ाक कहता है – "देश के अधिकतर हिस्सों में अच्छी खेती-बाड़ी होती है और ज़मीन उपजाऊ है। सैनिकों की संख्या ग्यारह लाख है"।

अब्दुर्रज्ज़ाक मानता था कि उसने दुनिया में जितने भी नगर देखे थे या जितने नगरों के बारे में सुना था, विजयनगर उनमें से सबसे शानदार नगरों में से था। नगर का वर्णन करते हुए वह कहता है – "यह इस ढंग से बना हुआ है कि सात दुर्ग और इतनी ही दीवारें एक दूसरे को आवेष्टित करते हैं। अन्य दुर्गों के बीच स्थित सातवाँ दुर्ग हेरातनगर के बाजार से दस गुने क्षेत्र में फैला हुआ है"। राजमहल से शुरू होकर चार बाजार थे "जो बहुत ही लंबे और चौड़े थे"। भारतीयों के बीच प्रचलित रीति के मुताबिक एक पेशे या जाति के लोग शहर के एक हलके में रहते थे। मालूम होता है, मुसलमान उनके लिए सुलभ कराए गए अलग हलकों में रहते थे। बाजारों में और राजा के महल में भी "कटे-तराशे, पालिशदार और चिकने पत्थरों से बने और पानी से भरे अनेक तालाब और नहरें दिखाई देती हैं।" बाद के एक यात्री का कहना है कि विजयनगर रोम से बड़ा था। स्मरणीय है कि उन दिनों रोम पश्चिमी यूरोप के सबसे बड़े नगरों

में से था।

विजयनगर के राजाओं की बहुत धनवान होने की ख्याति थी। अब्दुर्रज्ज़ाक ने इस अनुश्रुति का भी उल्लेख किया है कि "राजा के महल में सोने-चाँदी से भरे अनेक कोठरीनुमा हौज़ हैं।" शासकों द्वारा विशाल संपत्ति को दबाकर रखना एक प्राचीन परंपरा थी, लेकिन इस तरह दबाकर रखी गई संपत्ति का कोई उपयोग नहीं हो पाता था और कभी-कभी वह बाहरी आक्रमणों के लिए प्रलोभन का काम करती थी।

बहमनी सल्तनत : प्रादेशिक विस्तार और विघटन

बहमनी सल्तनत के उदय और द्वितीय देवराय की मृत्यु (1446 ई.) तक विजयनगर साम्राज्य से उसके संघर्ष के इतिहास की रूपरेखा हम पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं। इस काल में बहमनी सल्तनत की सबसे उल्लेखनीय हस्ती फिरोजशाह बहमनी (1397 ई.- 1422 ई.) था। उसे कुरान की टीकाओं और इस्लामी कानून का बहुत अच्छा ज्ञान था। वनस्पतिशास्त्र जैसे प्राकृतिक विज्ञानों, ज्यामिति, तर्कशास्त्र आदि में उसकी विशेष रुचि थी। वह श्रेष्ठ खुशनवीस (सुलेखकार) और कवि था। वह अक्सर आशु कविता किया करता था। फरिश्ता के अनुसार उसका न केवल फारसी, अरबी और तुर्की भाषाओं पर अधिकार था, बल्कि उसे तेलुगु, कन्नड़ और मराठी में भी उतना ही महारत हासिल था, उसके हरम में उसकी बहुत सारी पत्नियाँ थीं जो अलग-अलग देशों और अलग-अलग क्षेत्रों की थीं। इनमें से कई हिंदू भी थीं। कहते हैं, वह अपनी हर पत्नी से उसी की भाषा में बात करता था।

फिरोज़शाह बहमनी दकन को भारत का सांस्कृतिक केंद्र बनाने को कटिबद्ध था। इसमें दिल्ली सल्तनत के पतन से उसे मदद मिली, क्योंकि उसके बाद बहुत से विद्वान दिल्ली छोड़कर दकन में आ बसे। उसने ईरान और इराक से आए विद्वानों को भी प्रोत्साहन और प्रश्रय दिया। वह कहा करता था कि राजा को सभी देशों के विद्वानों और गुणीजनों को अपने आसपास एकत्र रखना चाहिए ताकि वह उनसे उनके समाजों के बारे में जानकारी हासिल कर सके और इस तरह इन देशों की यात्रा करके वह जो कुछ प्राप्त कर सकता है वह लाभ घर बैठे हासिल कर सकता है। वह आम तौर पर आधी-आधी रात तक धर्मतत्वज्ञों, कवियों, ऐतिहासिक विवरणों के वाचकों और मेधावी तथा वाक्पटु दरबारियों की संगति में रहता था। उसने पूर्वविधान (ओल्ड टेस्टामेंट) और नवविधान (न्यू टेस्टामेंट) दोनों को पढ़ा था। वह सभी धर्मों के मूल सिद्धांतों का आदर करता था। फरिश्ता के अनुसार वह एक सच्चा मुसलमान था जिसकी कमजोरी सिर्फ यह थी कि वह शराब पीता था और संगीत सुनता था।

फिरोजशाह बहमनी ने सबसे महत्वपूर्ण कदम यह उठाया कि उसने प्रशासन में हिंदुओं को बड़े पैमाने पर स्थान दिया। कहा जाता है कि उसके काल से दकनी ब्राह्मणों ने प्रशासन में, खास तौर से राजस्व प्रशासन में, प्रधानता की स्थिति प्राप्त कर ली। दकनी हिंदुओं ने बड़ी संख्या में बाहर से आनेवाले लोगों के प्रभाव को प्रतिसंतुलित किया। फिरोजशाह बहमनी ने खगोलविज्ञान को बढ़ावा दिया और दौलताबाद के निकट एक वेधशाला

ब्रनवाई। उसने अपने राज्य के मुख्य बंदरगाह चौल और डाभोल की ओर खास ध्यान दिया। फ़ारस की खाड़ी और लालसागर से व्यापारिक जहाज़ यहाँ पहुँचने लगे और दुनिया के सभी भागों से विलासिता की वस्तुओं की यहाँ भरमार होने लगी।

खेरला के गोंड राजा नरसिंह राय को पराजित करके फ़िरोज़ बहमनी ने बरार की ओर अपना राज्यविस्तार शुरू किया। राजा ने उसे 40 हाथी, 5 मन सोना और 5 मन चाँदी भेंट की। फ़िरोज़ के साथ राय की एक बेटी का विवाह भी कर दिया गया। खेरला नरसिंह को वापस कर दिया गया और उसे राज्य का अमीर बना दिया गया एवं जरीदार टोपी सहित राज्य का परिधान प्रदान किया गया।

प्रथम देव राय की पुत्री के साथ फ़िरोज़शाह के विवाह और आगे चलकर विजयनगर के खिलाफ़ उसकी लड़ाइयों का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। लेकिन कृष्णा-गोदावरी घाटी पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए इसके बाद भी संघर्ष चलता रहा। 1419 ई. में बहमनी राज्य को एक आघात लगा। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, प्रथम देव राय ने फ़िरोज़शाह को हरा दिया था। इस हार से फ़िरोज़ की स्थिति कमज़ोर हो गई थी। उसे अपने भाई प्रथम अहमद शाह के हक में गद्दी छोड़नी पड़ी। प्रसिद्ध सूफ़ी संत गेसू दराज़ से अपनी संगति के कारण उसे वली या संत भी कहा जाता है। अहमद शाह ने दक्षिण भारत के पूर्वी समुद्रतट पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए संघर्ष जारी रखा। वह यह नहीं भूल पाया था कि जिन दो पिछली लड़ाइयों में बहमनी सुल्तान की हार हुई थी उनमें वारंगल ने विजयनगर का साथ दिया था। बदला लेने के लिए उसने वारंगल पर आक्रमण कर वहाँ के राजा को लड़ाई में हराकर मार डाला और उसके अधिकृत प्रदेशों को अपनी सल्तनत में मिला लिया। नवविजित प्रदेशों पर अपने शासन को सुदृढ़ करने के लिए वह राजधानी गुलबर्गा से बीदर ले गया। इसके बाद उसने मालवा, गोंडवाना और कोंकण की ओर ध्यान दिया।

महमूद गवान

वारंगल के बहुत-से हिस्सों के बहमनी सल्तनत के कब्ज़े में चले जाने से दक्षिण भारत का शक्ति संतुलन बदल गया। बहमनी राज्य धीरे-धीरे फैलता गया और महमूद गवान की पेशवाई (प्रधान मंत्रित्व) में वह अपनी शक्ति और प्रादेशिक विस्तार की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। महमूद गवान के आरंभिक जीवन के संबंध में हमें स्पष्ट जानकारी नहीं है। वह जन्म से ईरानी था और आरंभ में वाणिज्य-व्यापार में लगा हुआ था। सुल्तान से उसका परिचय कराया गया तो वह शीघ्र ही उसका कृपापात्र बन गया। सुल्तान ने उसे मलिक-उत-तुज्जार का खिताब बख्शा। इसके कुछ दिन बाद ही वह सुल्तान का पेशवा या प्रधानमंत्री बन गया। लगभग 20 वर्षों तक राजकाज में महमूद गवान का बोलबाला रहा। पूर्व में और भी प्रदेशों को जीतकर उसने बहमनी सल्तनत की सीमाओं का विस्तार किया। विजयनगर के प्रदेशों में बहुत अंदर कांची तक जाकर किए गए हमले से बहमनियों की ताकत की धाक जम गई। लेकिन महमूद गवान का प्रमुख सैनिक योगदान पश्चिमी तट के प्रदेशों पर, जिनमें दाभोल और गोआ भी

शामिल थे, हासिल की गई जीतें थीं। इन बंदरगाहों का हाथ से निकल जाना विजयनगर के लिए गहरा आघात था। गोआ और दाभोल पर अधिकार हो जाने से ईरान, इराक आदि के साथ व्यापार में और वृद्धि हुई। आंतरिक व्यापार और माल के उत्पादन में भी तेज़ी आई।

महमूद गवान ने राज्य की उत्तरी सीमाओं को भी स्थायित्व प्रदान करने की कोशिश की। प्रथम अहमदशाह के समय से ही खलजी शासकों के अधीन मालवा राज्य, गोंडवाना, बरार और कोंकण पर वह अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील था। इस संघर्ष में बहमनी सुल्तानों ने गुजरात के शासकों की सहायता प्राप्त करने का सफल प्रयास किया था। काफ़ी संघर्ष के बाद तय हुआ था कि गोंडवाना का खेरला इलाका मालवा को मिलेगा और बरार बहमनी सुल्तान को। लेकिन मालवा के शासक हमेशा बरार को हथियाने की ताक में रहते थे। महमूद गवान को मालवा के शासक महमूद खिलजी के खिलाफ़ बरार को लेकर कई कठिन लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। गुजरात के शासक से प्राप्त सक्रिय सहायता की बदौलत उसने अंत में सफलता प्राप्त की।

इस तरह हम देख सकते हैं कि दक्षिण में संघर्ष का जो रूप था उसके धार्मिक आधार पर विभाजन की गुंजाइश नहीं थी। संघर्ष के अधिक महत्वपूर्ण कारण राजनीति और समरनीतिक थे और इसमें वाणिज्य-व्यापार पर नियंत्रण एक प्रमुख प्रयोजन हुआ करता था। दूसरे, उत्तर भारत के विभिन्न राज्यों तथा दक्षिण भारत के अलग-अलग राज्यों के बीच का संघर्ष एक-दूसरे से पूरे तौर पर कटा हुआ नहीं था। पश्चिम में गुजरात और मालवा दकन के मामलों में दिलचस्पी रखते थे, पूर्व में उड़ीसा का बंगाल के साथ संघर्ष चल रहा था और उसकी नज़र कोरोमंडल तट पर भी गड़ी हुई थी। 1450 ई. के बाद उड़ीसा के शासक दक्षिण में दूर तक आगे बढ़ आए। उनकी सेना मदुरै तक पहुँच गई थी। उनकी गतिविधियों से विजयनगर साम्राज्य, जो देवराय द्वितीय की मृत्यु के बाद आंतरिक कलह से फँसा हुआ था, और भी कमज़ोर हुआ।

महमूद गवान ने कई आंतरिक सुधार भी किए। उसने राज्य को आठ प्रांतों या तरफ़ों में विभाजित कर दिया। हर तरफ़ का शासन एक तरफ़-दार चलाता था। हर अमीर की तनख्वाह और जिम्मेदारियाँ तय कर दी गईं। 500 घुड़सवारों की सेना रखने के लिए एक अमीर को 1,00,000 हूण दिए जाते थे। वेतन नकद भी दिया जा सकता था या जागीर के रूप में भी। जिन्हें जागीर के रूप में भुगतान किया जाता था उन्हें भूराजस्व की उगाही के लिए अलग से खर्च भी दिया जाता था। हर प्रांत में थोड़ी सी ज़मीन (खालिसा) सुल्तान के खर्च के लिए अलग कर दी जाती थी। ज़मीन की पैमाइश करने और किसानों के द्वारा राज्य को दी जानेवाली रकमें तय कर देने की भी कोशिशें की गईं।

महमूद गवान कला का बहुत बड़ा संरक्षक था। उसने राजधानी बीदर में एक शानदार मदरसा या कॉलेज भी बनवाया। मदरसे की सुंदर तिमंज़िली इमारत रंगीन टाइलों से सज्जित थी। उसमें एक हजार शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए स्थान था। उन्हें मुफ़्त खाना-कपड़ा दिया जाता था। उस काल के कुछ प्रसिद्ध ईरानी और ईराकी विद्वान भी

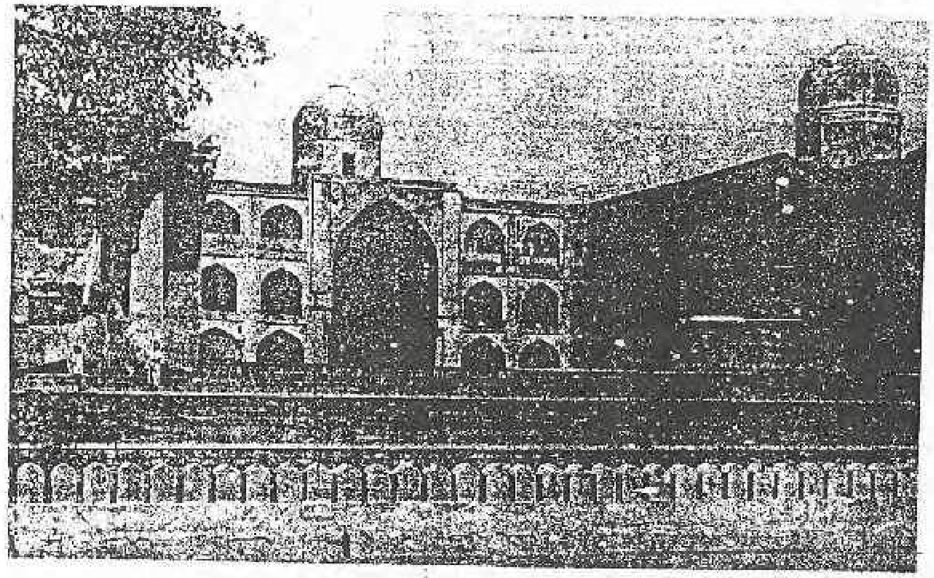

चित्र 9.1 बीदर में महमूद गवान का मदरसा

मदरसे में अध्यापन के लिए आए।

बहमनी सल्तनत की एक बड़ी समस्या अमीरों के बीच चलने वाले झगड़े थे। अमीर लोग पूर्वागंतुकों और दकनियों और अफाकियों या नवागतुकों (जो गरीब भी कहलाते थे) में बंटे हुए थे। महमूद गवान नवागंतुक था तो उसे पूर्वागंतुकों का विश्वास जीतने में कठिनाई का सामना करना पड़ा था। यद्यपि उसने सुलह-समझौते के रुख से काम लिया तथापि झगड़ा बंद नहीं हुआ। उसके विरोधियों ने युवा सुल्तान के कान भर दिए और 1482 ई. में उसने गवान को मृत्यु दंड दे दिया उस समय महमूद गवान 70 साल से अधिक उम्र का था। अब अमीरों का दलगत झगड़ा और भी तेज हो गया। विभिन्न सूबेदार स्वतंत्र हो गए। शीघ्र ही बहमनी सल्तनत पाँच छोटे-छोटे राज्यों में बंट गई - गोलकुंडा, बीजापुर, अहमदनगर, बरार और बीदर। इनमें से अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा ने दकन की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आखिर सत्रहवीं सदी में इन्हें मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

बहमनी सल्तनत ने उत्तर और दक्षिण के बीच सांस्कृतिक सेतु का काम किया। इसके फलस्वरूप जिस संस्कृति का विकास हुआ उसकी अपनी अलग विशेषताएँ थीं जो उत्तर भारत की संस्कृति की खूबियों से भिन्न थी। बहमनी सल्तनत के उत्तराधिकारी राज्यों ने इन सांस्कृतिक परंपराओं

को आगे भी कायम रखा। इन परंपराओं से इस काल में मुगल संस्कृति का विकास भी प्रभावित हुआ।

विजयनगर साम्राज्य का चरमोत्कर्ष और विघटन

जैसा कि ऊपर कहा गया है, द्वितीय देवराय (1446 ई.) की मृत्यु के बाद अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो गई। चूँकि विजयनगर में ज्येष्ठाधिकार (पिता की मृत्यु पर उसके सबसे बड़े पुत्र को उत्तराधिकार मिलने) का नियम प्रतिष्ठित नहीं हो पाया था, इसलिए गद्दी के अलग-अलग दावेदारों के बीच कई लड़ाइयाँ हुईं। इस क्रम में कई सामंत राजाओं ने स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। राज्य के मंत्री बहुत शक्तिशाली हो गए और प्रजा से नजराने और भारी कर वसूल करने लगे जिससे आम जनता बहुत कष्ट में पड़ गई। राजा ऐशो-आराम में गर्क हो गए और राजकाज की उपेक्षा करने लगे। कुछ समय बाद राजा के मंत्री सालुव ने गद्दी पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार पूर्व राजवंश का अंत हो गया। सालुव ने आंतरिक शांति व्यवस्था कायम की और एक नए राजवंश की स्थापना की। लेकिन यह राजवंश भी शीघ्र ही मिट गया। अंत में कृष्णदेव ने तुलुवा नामक एक नए राजवंश की स्थापना की। कृष्णदेव राय (1509 ई. - 30 ई.) इस राजवंश का सबसे महान राजा हुआ। कुछ इतिहासकार उसे विजयनगर के सभी राजाओं में सबसे महान मानते हैं। कृष्णदेव को न केवल फिर से आंतरिक शांति सुव्यवस्था कायम करनी पड़ी, बल्कि विजय नगर के पुराने प्रतिद्वंद्वियों से भी निबटना पड़ा। उसके इन प्रतिद्वंद्वियों में बहमनी सल्तनत के उत्तराधिकारी राज्यों के अलावा उड़ीसा का राज्य भी था जिसने विजयनगर के काफी प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। इनके अतिरिक्त उसे पुर्तगालियों से भी निबटना था जिनकी ताकत धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। वे तटीय क्षेत्रों में विजयनगर के अधीनस्थ छोटे-छोटे राज्यों को आतंकित करके उनसे आर्थिक तथा राजनीतिक रियायतें हासिल करने के लिए अपनी समुद्री ताकत का इस्तेमाल कर रहे थे। उन्होंने तो राय के सामने यह प्रस्ताव भी रखा था कि अगर वह तटीय प्रदेशों के मामलों में तटस्थ रहे तो बीजापुर राज्य से गोआ छीनने में वे उसकी मदद करेंगे और घोड़ों के आयात के मामले में उसे एकाधिकार प्रदान कर देंगे।

कृष्णदेव राय ने सात साल के लंबे दौर तक चलने वाली एक के बाद एक कई लड़ाइयों में उड़ीसा के राजा को हराकर कृष्णा नदी तक के प्रदेश विजयनगर को वापस कर देने पर मजबूर कर दिया। इस प्रकार अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाकर उसने तुंगभद्रा दोआब पर अधिकार स्थापित करने का पुराना संघर्ष एकबार फिर छेड़ दिया। इसके जवाब में उसके दो मुख्य शत्रुओं - बीजापुर और उड़ीसा ने आपस में गठजोड़ कर लिया। कृष्णदेव ने लड़ाई के लिए भारी तैयारी की। उसने रायचूर और मुदकल पर अधिकार करके संघर्ष का श्रीगणेश किया। उसके बाद जो लड़ाई हुई उसमें बीजापुर का शासक बुरी तरह पराजित हुआ (1520 ई.)। उसे कृष्णा नदी के पार खदेड़ दिया गया और वह मुश्किल से अपनी जान बचा पाया। पश्चिम में, विजयनगर की सेना बेलगाँव पहुँच गई और उसने बीजापुर पर कब्जा कर लिया और कई दिनों तक वहाँ तबाही मचाती रही। उसने गुलबर्गा को भी तहस-नहस

कर दिया जिसके उपरांत युद्धविराम हुआ।

इस प्रकार कृष्णदेव के अधीन विजयनगर एक बार फिर दक्षिण की प्रबल सैनिक शक्ति के रूप में उभरा। परंतु अपना पुराना वैर निकालने के उत्साह में दक्षिण की शक्तियों ने एक भारी भूल कर दी जो यह थी कि उनके तथा उनके वाणिज्य-व्यापार के लिए पुर्तगालियों के उदय से जो खतरा पैदा हो रहा था उसकी उन्होंने बहुत हद तक उपेक्षा कर दी। चोलों और विजयनगर के कुछ आरंभिक राजाओं के विपरीत कृष्णदेव ने नौसेना के विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

इस काल में विजयनगर की अवस्था का वर्णन कई विदेशी यात्रियों ने किया है। पेस नामक एक इतालवी ने कृष्णदेव के दरबार में कई साल बिताए थे। उसने राय के व्यक्तित्व की बहुत शानदार तस्वीर पेश की है। उसे उसने "एक महान शासक और अत्यंत न्यायप्रिय" बताया है, लेकिन साथ ही वह कहता है, "उसे सहसा बहुत क्रोध आ जाता है"। वह अपनी प्रजा से बहुत प्रेम करता था और उसकी भलाई के लिए वह इतना फिक्रमंद रहता था कि उसकी चर्चा जन-जन में होती थी।

कृष्णदेव एक महान निर्माता भी था। उसने विजयनगर के निकट एक नया शहर बसाया और एक विशाल तालाब भी खुदवाया जिसका उपयोग सिंचाई के लिए भी किया जाता था। वह स्वयं तेलुगु और संस्कृत का मेधावी विद्वान था। उसकी अनेक कृतियों में से सिर्फ दो ही उपलब्ध हैं – एक है राज्य व्यवस्था पर तेलुगु की एक रचना और दूसरी है संस्कृत में लिखा एक नाटक। उसके शासनकाल में तेलुगु साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। अब सिर्फ संस्कृत ग्रंथों की नकल करने की बजाय स्वतंत्र साहित्य का सृजन किया जाने लगा। उसने तेलुगु, कन्नड़ और तमिल कवियों को प्रश्रय दिया। बारबोसा, पेस और नूनिज़ जैसे विदेशी यात्रियों ने उसके कुशल प्रशासन तथा उसके अधीन विजयनगर साम्राज्य की समृद्धि के बारे में काफी लिखा है। बारबोसा कहता है – "राजा इतनी आज़ादी देता है कि कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार आ-जा सकता है और अपने धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत कर सकता है। उसे इसके लिए किसी प्रकार की नाराज़गी नहीं झेलनी पड़ती है और न उसके बारे में यह जानकारी हासिल करने की कोशिश की जाती है कि वह ईसाई है या यहूदी, मूर है अथवा नास्तिक"। बारबोसा ने कृष्णदेव के साम्राज्य में बरते जाने वाले न्याय और समानता के व्यवहार की भी प्रशंसा की है।

कृष्णदेव की मृत्यु (1530 ई.) के समय उसके सभी पुत्र नाबालिग थे इसलिए उसके संबंधियों में गद्दी के लिए झगड़ा शुरू हो गया। अंत में 1543 ई. में सदाशिव राय गद्दी पर बैठा और 1567 ई. तक उसने राज किया। लेकिन वास्तविक सत्ता एक तिगड्डे के हाथों में थी जिसमें प्रमुख था रामराजा। रामराजा ने विभिन्न मुस्लिम शासकों को एक-दूसरे के खिलाफ उकसाते रहने में कामयाबी हासिल की। उसने पुर्तगालियों के साथ एक व्यापारिक संधि की जिसके अनुसार बीजापुर के शासक को घोड़े की आपूर्ति बंद कर दी गई। एक के बाद एक कई लड़ाइयों में उसने बीजापुर के शासक को करारी हार दी और गोलकुंडा तथा अहमदनगर के शासकों को भी गहरी शिकस्त दी। मालूम होता है,

इस सबमें रामराजा का उद्देश्य सिर्फ यह था कि इन तीनों शासकों के बीच विजयनगर के अनुकूल शक्ति संतुलन कायम रहे। लेकिन उसका यह खेल अंत तक नहीं चल सका। एक समय ऐसा आया जब इन तीनों राज्यों के शासक आपस में मिल गए और 1565 ई. में तालिकोट के निकट बन्निहट्टि की लड़ाई में उन्होंने विजयनगर को गहरी शिकस्त दी। इसे तालिकोट की लड़ाई या राक्षस तंगडि की लड़ाई के नाम से भी जाना जाता है। रामराजा को घेर लिया गया और उसे पकड़कर तुरंत उसकी हत्या कर दी गई। कहते हैं, इस लड़ाई में 1,00,000 हिंदू मारे गए। विजयनगर को जी भरकर लूटा गया और बर्बाद करके छोड़ दिया गया।

बन्निहट्टि की लड़ाई को आम तौर पर विजयनगर के महान युग का अंत माना जाता है। यद्यपि यह राज्य इसके बाद भी लगभग सौ साल तक जैसे-तैसे खिंचता रहा तथापि इसके प्रदेश इसके अधिकार से लगातार निकलते गए और अब दक्षिण भारत के राजनीतिक मामलों में राय की कोई हैसियत नहीं रह गई थी।

विजयनगर के शासकों के राजत्व संबंधी विचार बहुत ऊँचे थे। राज्य-व्यवस्था पर अपनी पुस्तक में राजा को कृष्णदेव राय की सलाह यह है कि "तुम जो कुछ देखो या सुनो उसकी उपेक्षा किए बिना तुम्हें पूरी सावधानी के साथ और यथाशक्ति (नेक लोगों की) रक्षा करने और (दुष्टों को) दंड देने का कार्य करना चाहिए"। राजा को वह यह परामर्श भी देता है कि "प्रजा से उचित मात्रा में ही कर वसूल करे"।

विजयनगर राज्य में राजा को सलाह देने के लिए मंत्रियों की एक परिषद् होती थी जिसमें राज्य के प्रमुख सरदार हुआ करते थे। राज्य मंडलम् में विभाजित होता था। वैसे, मंडलम् को राज्य भी कहा जाता था। मंडलम् के नीचे क्रमशः नाडु (जिला), स्थल (उप-जिला) और ग्राम होता था।

विजयनगर के शासकों के अधीन ग्राम-स्वशासन की परंपरा काफी कमज़ोर पड़ गई थी। वंशानुगत नायकत्व का विकास होने से गाँवों की आज़ादी और पहलकदमी की प्रवृत्ति पर काफी अंकुश लग गया। प्रांतों के शासक आरंभ में राजपरिवार के लोग होते थे। बाद में अधीनस्थ राज-परिवारों के लोग और सरदार लोग भी मंडलेश्वर या प्रांतीय शासक नियुक्त किए जाने लगे। प्रांतीय शासक को काफी स्वायत्तता प्राप्त होती थी। वह अपना दरबार लगाता था, अपने अफ़सर नियुक्त करता था और अपनी सेना रखता था। उसे अपने सिक्के जारी करने की भी छूट थी, हालाँकि ये सिक्के कम मूल्य के होते थे। प्रांतीय शासक का कोई नियमित कार्यकाल नहीं होता था। उसका कार्यकाल उसकी योग्यता और शक्ति पर निर्भर होता था। प्रांतीय शासक को नए कर लगाने या पुराने कर माफ करने का अधिकार था। प्रत्येक प्रांतीय शासक केंद्र को एक निश्चित रकम और एक निश्चित संख्या में सैनिक देता था। हिसाब लगाया गया था कि राज्य की आमदनी 1,20,000,00 'परदाओं' की थी, लेकिन केंद्रीय सरकार को इस राशि का आधा ही मिलता था। इसलिए कुछ इतिहासकारों का विचार है कि विजयनगर केंद्रीकृत साम्राज्य की बजाय राज्यों का एक महासंघ था।

बहुत-से क्षेत्र अधीनस्थ राजाओं के अधीन थे। ये ऐसे राजा थे जिन्हें लड़ाई में पराजित करने के बाद उनके प्रदेश उन्हें लौटा दिए गए थे। राजा

सैनिक सरदारों को 'अमरम्' या निश्चित राजस्ववाला क्षेत्र भी दिया करता था। पलयगार (पालिगार) या नायक कहे जानेवाले इन सरदारों को राज्य की सेवा के लिए एक निश्चित संख्या में पैदल सैनिक, घोड़े और हाथी रखने पड़ते थे। नायकों को केंद्रीय कोष में कुछ धन भी देना पड़ता था। इन नायकों का वर्ग बहुत शक्तिशाली था और कभी-कभी सरकार के लिए उनपर नियंत्रण रखना कठिन हो जाता था। इसी तरह की आंतरिक कमज़ोरियों के कारण बन्निहट्टि की लड़ाई में विजयनगर की हार हुई और बाद में यह साम्राज्य विघटित हो गया। बहुत-से नायक, जैसे तंजौर और मदुरै के नायक, विजयनगर की उस पराजय के बाद से ही स्वतंत्र हो गए।

विजयनगर राज्य के अधीन किसानों की अवस्था के बारे में इतिहासकारों में सहमति नहीं है क्योंकि ज़्यादातर यात्रियों को ग्रामीण जीवन की कोई जानकारी नहीं थी और इसलिए उन्होंने उसके संबंध में कुछ मोटे ढंग की ही बातें लिखीं। सामान्यतः यह माना जा सकता है कि लोगों का आर्थिक जीवन न्यूनाधिक पूर्ववत रहा। उनके घर मुख्यतः फूस के बने होते थे जिनमें सिर्फ़ एक छोटा-सा दरवाज़ा होता था। वे आमतौर पर नंगे पैर रहते थे और कमर से ऊपर कोई वस्त्र धारण नहीं करते थे, ऊपरी वर्गों के लोग कभी-कभी नोकदार जूते पहनते थे और सिर पर रेशमी पगड़ी भी बाँधते थे, लेकिन कमर से ऊपर कोई कपड़ा नहीं पहनते थे। सभी वर्गों के लोग आभूषणों के बहुत प्रेमी थे और वे "कान, गले, बाँह आदि में उन्हें पहनते थे।"

किसानों से अपनी उपज का कितना हिस्सा राज्य को देना अपेक्षित था, इस संबंध में हमें बहुत कम जानकारी है। एक अभिलेख के अनुसार करों की दरें निम्न प्रकार थी :

> सर्दी के मौसम में कुरुवै (एक किस्म का चावल) की उपज का एक तिहाई भाग।
>
> तिल, रागी, चने आदि की पैदावार का एक चौथाई भाग।
>
> शुष्क भूमि में पैदा किए जानेवाले मोटे अनाजों और दूसरी फसलों का छठा भाग।

इस प्रकार फसल और मिट्टी की किस्म, सिंचाई की विधि आदि के अनुसार राजस्व की दरों में अंतर होता था।

भूराजस्व के अलावा और भी कर थे जैसे संपत्ति कर, पैदावार की बिक्री पर लगनेवाला कर, पेशागत कर, सैनिक कर (मुसीबत के दिनों में), विवाह-कर आदि। सोलहवीं सदी का यात्री निकितिन कहता है – "ज़मीन आबादी से भरी हुई है, लेकिन जो लोग गाँवों में रहते हैं वे बहुत दयनीय अवस्था में हैं, जबकि सरदार लोग खूब समृद्ध हैं और विलासिता का जीवन बिताते हैं"।

विजयनगर साम्राज्य में शहरी जीवन का विकास हुआ और वाणिज्य व्यापार की तरक्की हुई। बहुत-से शहर मंदिरों के इर्द-गिर्द विकसित हुए। मंदिर बहुत बड़े-बड़े होते थे और उन्हें तीर्थयात्रियों को प्रसादम, ईश्वर की सेवा, पुजारियों के निर्वाह आदि के लिए खाद्य पदार्थों तथा अन्य वस्तुओं की बहुत अधिक मात्रा में ज़रूरत होती थी। मंदिर बहुत समृद्ध थे और वे आंतरिक तथा अंतर्राष्ट्रीय दोनों तरह के व्यापार में सक्रिय हिस्सा लेते थे।

पुर्तगालियों का आगमन

1498 ई. में वास्को द गामा दो जहाज़ों के साथ

कालिकट बंदरगाह पर आकर रुका। उसके साथ एक गुजराती चालक भी था। उस चालक को गलती से अब्दुल मजीद के रूप में पहचाना गया है जो कि एक प्रमुख अरब भूगोलवेत्ता और यात्री था जिसने अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं। उसे शायद ही इतना नीचा काम करने के लिए कहा गया होगा। अफ्रीकी तट से कालिकट तक उसके जहाज़ों का मार्गदर्शन अब्दुल मजीद ने किया था। इस घटना को अक्सर एक नए दौर की शुरुआत माना गया है। इस दौर में समुद्रों का नियंत्रण यूरोपियों के हाथों में चला गया। इससे भारतीय व्यापार और व्यापारियों को ज़बर्दस्त धक्का लगा और अंत में यूरोपीय लोग भारत पर और उसके अधिकांश पड़ोसी देशों पर भी अपना औपनिवेशिक शासन तथा प्रभुत्व स्थापित करने में कामयाब हो गए। लेकिन इस तस्वीर के सही होने के बारे में पश्चिमी और भारतीय विद्वानों ने भी, खास तौर से द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत और इस भूभाग के देशों पर यूरोपीय राजनीतिक शासन की समाप्ति के बाद, ज़ोरदार शंका उठाई है।

भारतीय समाज के आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन पर पुर्तगालियों के प्रभाव का लेखा-जोखा लेने से पहले हम उन्हें भारत लानेवाले कारणों पर विचार कर लें। मोटे तौर पर कहें तो पुर्तगाली उस समय भारत आए जब दलदलों को सुखाने, जंगलों को साफ करने, सुधरे हलों का उपयोग आरंभ होने और फसलों को बदल-बदल कर उगाने के अधिक वैज्ञानिक चक्र का इस्तेमाल करने के फलस्वरूप यूरोप में कृषि का विकास और विस्तार हो रहा था जिससे वहाँ की अर्थव्यवस्था तेज़ी से प्रगति कर रही थी। शहरों का उदय और आंतरिक एवं विदेश व्यापार की अभिवृद्धि इस विकास का प्रमाण थी। रोम साम्राज्य के युग से ही यूरोप में प्राच्य वस्तुओं की माँग बढ़ती जा रही थी। इन वस्तुओं में चीन का रेशम और भारत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के मसाले और औषधियाँ शामिल थीं। आर्थिक पुनरुत्थान के कारण इन मांगों में और भी वृद्धि हुई-खास तौर से काली मिर्च और मसालों की माँग में, क्योंकि कृषि के विस्तार के फलस्वरूप जब चारागाहों की कमी हुई तो जाड़ों में पशुओं का वध अधिक संख्या में किया जाने लगा और माँस की अधिक उपलब्धता होने से उसे सुरक्षित रखने एवं ज़्यादा

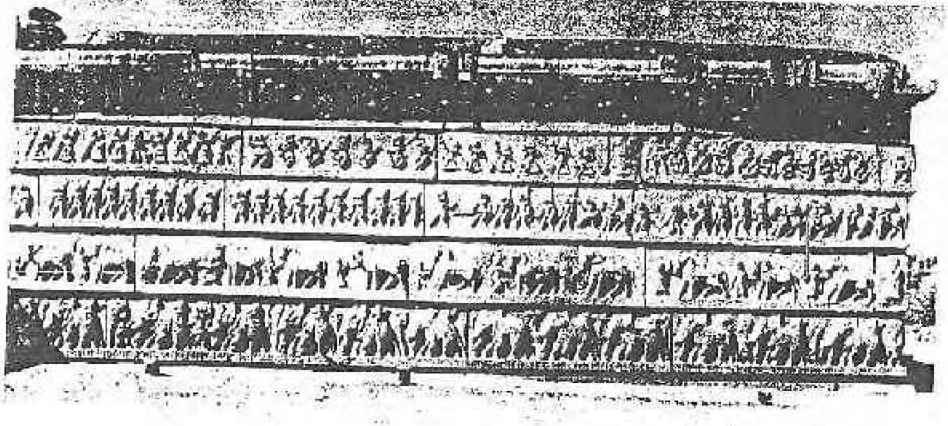

चित्र 9.2 हम्पी में स्थित हजारा राम मंदिर का एक भाग

स्वादिष्ट बनाने के लिए मसालों की ज़रूरत पड़ी।

भारत और दक्षिण पूर्व एशिया से काली मिर्च मुख्य रूप से थल मार्ग से, लेकिन कुछ-कुछ जल मार्ग से भी, निकट पूर्व, मिस्र और कालासागर की बंदरगाहों तक लाई जाती थी। पंद्रहवीं सदी के आरंभिक वर्षों में उस्मानिया साम्राज्य के उदय के फलस्वरूप ये सभी क्षेत्र तुर्कों के नियंत्रण में चले गए। उदाहरण के लिए 1453 ई. में उन्होंने कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लिया और कुछ समय बाद सीरिया तथा मिस्र पर। तुर्क व्यापार के खिलाफ नहीं थे लेकिन काली मिर्च के व्यापार पर लगभग उनका एकाधिकार हो जाना यूरोपियों के हितों के विरुद्ध था। पूर्वी यूरोप की ओर तुर्क सत्ता के विस्तार और तुर्क नौसेना के विकास ने, जिसके फलस्वरूप पूर्वी भूमध्य सागर में उनका पूरा दबदबा हो गया था, यूरोपीयों को चौंका दिया। पौर्वात्य वस्तुओं के व्यापार में सबसे सक्रिय वेनिस और जिनेवा थे, लेकिन ये इतने छोटे राज्य थे कि तुर्कों के खिलाफ़ खड़ा होना इनके बस की बात नहीं थी। खास तौर से वेनिस ने तो शीघ्र ही तुर्कों से समझौता कर लिया। इसलिए तुर्कों से उत्पन्न खतरों के खिलाफ़ संघर्ष करने का बीड़ा पश्चिमी भूमध्य सागर की शक्तियों ने अर्थात् स्पेन तथा पुर्तगाल ने उठाया। पैसे और आदमी से उनकी सहायता उत्तर यूरोपीय देशों ने की तथा जहाजों और तकनीकी जानकारी से जिनेवावासियों ने, जो वेनिस के प्रतिद्वंद्वी थे। केवल पुर्तगालियों ने ही नहीं बल्कि इन तमाम देशों ने भारत को जानेवाले सीधे समुद्री मार्ग की तलाश आरंभ कर दी और इस तरह समुद्री अनुसंधानों का युग आरंभ हुआ। इसी अनुसंधान के क्रम में जिनेवावासी क्रिस्टोफर कोलंबस ने अमरीका की खोज़ की, या यों कहें कि फिर से उस महाद्वीप की खोज की, क्योंकि उत्तर से नॉर्स लोग तथा बेरिंग जलडमरूमध्य से रेड इंडियन लोग पहले ही अमरीका पहुँच चुके थे। पुर्तगाली राजा दोम हेनरिक (जिसे आम तौर पर नाविक हेनरी कहा जाता है) के कार्य को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

अफ्रीका के पश्चिमी तट का अनुसंधान करने और भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज करने के लिए प्रिंस हेनरी 1418 ई. से हर साल दो-तीन जहाज भेजने लगा। उसके लक्ष्य दोहरे थे। एक तो था अरबों और साथ ही अपने यूरोपीय प्रतिद्वंद्वी वेनिसियाइयों को पूर्वी दुनिया के साथ चलनेवाले अति लाभदायक व्यापार से उखाड़ फेंकना और दूसरे अफ्रीका तथा एशिया के "विधर्मियों" को ईसाई बनाकर तुर्कों और अरबों की बढ़ती हुई शक्ति को प्रतिसंतुलित करना। दोनों लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए लगातार कोशिशें चलती रहीं। वस्तुतः ये लक्ष्य एक-दूसरे का औचित्य प्रतिपादित करने और एक-दूसरे को समर्थन देने का काम करते रहे। पोप ने 1453 ई. में एक धर्मादेश जारी करके उन्हें समर्थन दिया। इस धर्मादेश में घोषणा की गई कि अफ्रीका में नोर अंतरीप से आगे भारत तक पुर्तगाल जितनी भूमि की "खोज" करेगा वह सब "हमेशा के लिए" उसकी हो जाएगी बशर्ते वह नई खोज भूभाग के निवासियों को ईसाई बना ले।

1488 ई. में बार्थलम्यू डिआज़ ने उत्तमाशा अंतरीप का चक्कर लगाकर यूरोप तथा भारत के बीच प्रत्यक्ष व्यापारिक संबंध स्थापित कर दिया। इतनी लंबी समुद्री यात्राएँ कई उल्लेखनीय आविष्कारों के कारण ही संभव हो पाई। इनमें समुद्र में दिन

के समय मार्गदर्शन में सहायक नाविकों के कंपस का और ऐस्ट्रोलेब खास महत्व के थे। इन दोनों में से कोई भी आविष्कार यूरोपियों का आविष्कार नहीं था। चीनियों को नाविकों के कंपस का ज्ञान सदियों पूर्व से था, लेकिन उसका व्यापक उपयोग नहीं होता था। परंतु अरब, भारतीय तथा दूसरे लोग भी ऐस्ट्रोलेब का खूब इस्तेमाल करते थे। ऐसी बात भी नहीं थी कि रचना की दृष्टि से यूरोपीय जहाज़ उन दिनों एशियाई समुद्रों में चलनेवाले चीनी जंकों जैसे जहाजों से श्रेष्ठ रहे हों। जो बात नई थी वह थी यूरोपियों द्वारा प्रदर्शित साहस और उद्यमशीलता की भावना। इस भावना का मूल यूरोप में तेरहवीं सदी से आरंभ होनेवाले वाणिज्य-व्यापार के पुनरुत्थान और विकास के उस दौर में निहित बताया गया है जिसके कारण यूरोपीय राज्यों के बीच तीव्र प्रतिद्वंद्विता छिड़ गई थी। इतनी ही महत्वपूर्ण नई बौद्धिक जागृति भी थी जिसे पुनर्जागरण की संज्ञा दी गई है।

इस पुनर्जागरण का सबसे बड़ा परिणाम समझदारी को इल्हामी शब्दों या गिरजा संगठन (चर्च) के दायरे तक सीमित मानने के बदले स्वतंत्र चिंतन और अनुसंधान की वृत्ति का उदय था। इन नई बातों के कारण लोग अन्य विदेशी (अरब और चीनी चीजों को तेजी से ग्रहण करने लगे। उनका शीघ्रता से प्रचार हुआ और उनमें आवश्यक सुधार किए गए। बारूद, छपाई, दूरबीन आदि इसी तरह की खोजें थीं। धातु विज्ञान के विकास और श्रेष्ठ धौंकनियों के फलस्वरूप बेहतर बंदूकों का निर्माण संभव हुआ।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, वास्को द गामा 1498 ई. में एक गुजराती पाइलट के साथ कालिकट में उतरा। वहाँ बसी अरबों की बस्ती उसके खिलाफ थी, लेकिन वहाँ के ज़मोरिन ने पुर्तगालियों का स्वागत किया और उन्हें काली मिर्च, औषधियाँ आदि जहाज़ों में लादने दिया। पुर्तगाल में हिसाब लगाकर देखा गया कि इस यात्रा की लागत के मुकाबले गामा द्वारा लाए गए माल की कीमत साठ गुना अधिक थी। इसके बावजूद भारत और यूरोप के बीच सीधा व्यापार आहिस्ता-आहिस्ता ही विकसित हुआ। इसका एक कारण पुर्तगाल सरकार द्वारा बरता जानेवाला एकाधिकार का रवैया था। पुर्तगाली शासक आरंभ से ही पूर्व के साथ होनेवाले व्यापार को शाही इजारेदारी की चीज़ मानने को कटिबद्ध थे। इस क्षेत्र में वे यूरोप और एशिया के दूसरे देशों को ही नहीं, बल्कि खानगी पुर्तगाली व्यापारियों को भी प्रवेश नहीं करने देना चाहते थे।

पुर्तगालियों की बढ़ती शक्ति से चिंतित होकर मिस्र के सुल्तान ने एक बेड़े को युद्ध के लिए सज्जित करके भारत की ओर भेजा। रास्ते में गुजरात के शासक के जहाज़ों का एक छोटा-सा बेड़ा भी उसके साथ हो गया। मिस्री बेड़े ने आरंभ में कुछ सफलता हासिल की और लड़ाई में पुर्तगाली गवर्नर दॉन अलमैडा का लड़का मारा गया। लेकिन अंत में 1509 ई. में पुर्तगालियों ने इस संयुक्त बेड़े को हरा दिया। इस जीत से पुर्तगाली सेना हिंद महासागर में कुछ काल के लिए सर्वशक्तिमान बन गई और उसने पुर्तगालियों को फारस की खाड़ी और लाल सागर की ओर अपनी गतिविधियों का विस्तार करने की सामर्थ्य प्रदान की।

कुछ समय बाद अलबुकर्क पुर्तगाल के पूर्वी दुनिया के प्रदेशों का शासक (गवर्नर) नियुक्त

हुआ। उसने एशिया और अफ्रीका के सामरिक महत्व के अलग-अलग ठिकानों पर किले स्थापित करके समस्त पौर्वात्य वाणिज्य पर पुर्तगाल का दबदबा कायम करने की अपनी नीति को अंजाम देना शुरू कर दिया। इसके लिए एक शक्तिशाली नौसेना की सहायता आवश्यक थी। लेकिन अलबुकर्क ने इस संबंध में अपना संतुलित दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा "केवल नौसेना के बल पर स्थापित प्रभुत्व स्थाई नहीं हो सकता। किलों के अभाव में वे (पूर्वी राज्यों के शासक) न तो व्यापार करेंगे और न आपके साथ मैत्रीपूर्ण रवैये से काम लेंगे।"

अपनी नई नीति पर अमल शुरू करते हुए अलबुकर्क ने 1510 ई. में बीजापुर से गोआ छीन लिया। गोआ का द्वीप एक श्रेष्ठ प्राकृतिक बंदरगाह और किला था और उसकी स्थिति सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण थी। वहाँ से पुर्तगाली मालाबार के व्यापार को नियंत्रित कर सकते थे और दकन के शासकों की नीतियों पर भी निगाह रख सकते थे। वह गुजरात के समुद्री बंदरगाहों से भी इतना निकट था कि वहाँ से पुर्तगाली उन्हें अपनी उपस्थिति का एहसास आसानी से करा सकते थे। इस प्रकार पूर्व में गोआ पुर्तगाली व्यापारिक तथा राजनीतिक गतिविधियों का मुख्य केंद्र बनने के सर्वथा उपयुक्त था। पुर्तगालियों ने गोआ के सामने पड़ने वाले भारत की मुख्य-भूमि पर भी अपना अधिकार स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने बीजापुर के बंदरगाह डांडा-राजौड़ी और दामोल की नाकेबंदी करके उन्हें जी भरकर लूटा। इस प्रकार उन्होंने बीजापुर का समुद्री व्यापार ठप्प कर दिया।

गोआ के अपने स्थायी ठिकाने से अपनी स्थिति को और भी सुदृढ़ बनाते हुए पुर्तगालियों ने श्रीलंका में कोलंबो, सुमात्रा में अचिन और मलक्का में एक-एक किला स्थापित कर लिया। स्मरणीय है कि मलक्का के बंदरगाह की स्थिति ऐसी थी जहाँ से मलय प्रायद्वीप और सुमात्रा के बीच पड़नेवाली संकरी खाड़ी में जहाज़ों के आवागमन को नियंत्रित किया जा सकता है। उन्होंने लाल सागर के मुहाने पर सोकोत्रा द्वीप में भी अपना एक अड्डा कायम कर लिया, अदन पर आक्रमण किया पर तुर्कों द्वारा पराजित हो गए। तथापि, उसने फारस की खाड़ी में प्रवेश को नियंत्रित करने वाले ओरमुज़ राज्य के शासक को वहाँ एक दुर्ग स्थापित करने की इजाज़त देने पर मजबूर किया।

परंतु पुर्तगालियों की सफलता वास्तविक होने के बजाय सतही थी। आरंभ से ही उन्हें कई आंतरिक और बाहरी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था। बाहरी चुनौती के स्रोत तुर्क थे। कभी-कभी अरब और कोई-कोई भारतीय शासक भी उनके साथ हो जाते थे। सीरिया, मिस्र और अरब को जीतने के बाद तुर्कों ने पूर्वी यूरोप को जीतने का सिलसिला शुरू कर दिया था। 1529 ई. में इन तुर्कों से वियना को ही खतरा पैदा हो गया जो मध्य यूरोप की राजधानी था और उसकी सुरक्षा का मुख्य दुर्ग। लाल सागर के तट पर और फारस की खाड़ी में तुर्कों की शक्ति की अभिवृद्धि को देखते हुए लग रहा था कि हिंद महासागर के पश्चिमी हिस्से पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए तुर्कों और पुर्तगालियों के बीच टक्कर अवश्यंभावी थी। उस्मानिया साम्राज्य के आला वज़ीर लुत्फी पाशा ने 1541 ई. में महाप्रतापी सुल्तान सुलेमान को लिखा : "पूर्ववर्ती सुल्तानों में से कइयों ने भूमि पर शासन किया, लेकिन समुद्र पर

किसी ने नहीं। समुद्री लड़ाई में काफ़िर हमसे आगे हैं। हमें उन्हें मात देनी है"।

गुजरात के व्यापार और तटवर्ती क्षेत्रों पर बढ़ते हुए पुर्तगाली खतरे को ध्यान में रखकर गुजरात के सुल्तान ने उस्मानिया सुल्तान के पास अपना दूत-मंडल भेजकर उसकी जीतों पर उसे बधाई दी और उससे सहायता याचना की। उत्तर में उस्मानिया सुल्तान ने अरब देश के तटों में अशांति मचाने वाले काफिरों, (अर्थात् पुर्तगालियों) से लड़ने का इरादा ज़ाहिर किया। इसके बाद से दोनों देशों के बीच लगातार दूत-मंडलों और पत्रों का आदान-प्रदान होता रहा। पुर्तगालियों को लाल सागर से निकाल बाहर करने के बाद 1529 ई. में उस्मानिया सुल्तान ने गुजरात के शासक बहादुरशाह की मदद के लिए सुलेमान रईस के नेतृत्व में एक शक्तिशाली बेड़ा भेजा। बहादुरशाह ने उसकी खूब आवभगत की और दो तुर्क अधिकारियों को भारतीय नाम देकर सूरत और दीव का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। इनमें से रूमी खाँ आगे चलकर एक महान तोपची के रूप में खूब नाम कमाने वाला था।

कुछ स्थानीय अधिकारियों के साथ षड्यंत्र और साँठ-गाँठ करके 1531 ई. में पुर्तगालियों ने दमन और दीव पर आक्रमण कर दिया। लेकिन उस्मानिया सेनापति रूमी खाँ ने इस आक्रमण को विफल कर दिया और इस तरह पुर्तगाली पश्चिमी तट पर ज़रा नीचे की ओर चौल में एक किला बनवाने में कामयाब हो गए।

इससे पहले कि गुजरात-तुर्की संधि के पुख्ता हो, गुजरात पर एक और बड़ा संकट आ गया। दिल्ली के मुगल बादशाह हुमायूँ ने गुजरात पर हमला कर दिया। इस खतरे का सामना करने के लिए बहादुरशाह ने बेसीन का द्वीप पुर्तगालियों को दे दिया। मुगलों के खिलाफ़ एक रक्षात्मक और आक्रामक संधि भी की गई एवं पुर्तगालियों को दीव में एक किला बनवाने की इजाज़त दे दी गई। इस प्रकार पुर्तगाली गुजरात में अपने पैर जमाने में कामयाब हो गए।

लेकिन पुर्तगालियों को दी गई इन रियायतों के लिए बहादुरशाह को शीघ्र ही पछताना पड़ा। मुगलों को गुजरात से निकाल बाहर करने के बाद बहादुरशाह ने एक बार फिर तुर्की के सुल्तान से मदद माँगी और दीव में पुर्तगालियों की शक्ति के प्रसार को रोकने की कोशिश की। जब बहादुरशाह और पुर्तगालियों के बीच समझौते के लिए वार्ता चल रही थी उस समय बहादुरशाह दीव के किले के गवर्नर के एक जहाज़ पर था। उसे लगा कि उसके साथ धोखा किया जा रहा है। गवर्नर के साथ उसके दो-दो हाथ हुए, जिसमें गवर्नर मारा गया। बहादुरशाह ने जहाज़ से कूद कर, तैर कर किनारे पर आने की कोशिश की लेकिन डूबकर मर गया। यह बात 1536 ई. की है।

यद्यपि उस्मानिया सुल्तान इस्लाम के ध्वज-धारी होने का दावा करते थे और इसलिए वे स्वयं को पुर्तगालियों का विरोधी बताते थे, लेकिन उन्होंने फारस की खाड़ी में या उससे आगे पुर्तगालियों की शक्ति का कभी जमकर विरोध नहीं किया और उन्होंने यह ढुलमुल रवैया इस तथ्य के बावजूद अपनाए रखा कि तोपखाने के विकास के क्षेत्र में और ज़रा कम सीमा तक नौसेना के मामले में भी तुर्क पश्चिमी दुनिया से कदम से कदम मिलाकर चलते रहे। पूर्वी भूमध्य सागर में तुर्क नौसेना का

बोलबाला था और कभी-कभी तो वह जिब्राल्टर से आगे भी धावा बोल देती थी। पुर्तगालियों के खिलाफ़ भारतीय समुद्र में अपनी नौसैनिक शक्ति का सबसे बड़ा प्रदर्शन तुर्कों ने 1536 ई. में किया। उनके बेड़े में गैलियन किस्म के 45 जहाज़ थे जिनपर 7000 थल सैनिकों या जॉनिस्सारीयों को मिलाकर 20,000 लोग सवार थे। बहुत-से नाविकों को अलेक्जैंड्रिया (सिकंद्रिया) में स्थित वेनिसीयाई गैलियों (जहाज़ की एक किस्म) से बुलाकर बेड़े में शामिल किया गया। इस बेड़े का कमांडर 82 वर्षीय सुलेमान पाशा था जो सुल्तान का सबसे विश्वासपात्र आदमी था और कैरो (काहिरा) का शासक नियुक्त किया गया था। 1538 ई. में दीव पहुँचकर इस बेड़े ने उसपर घेरा डाल दिया। दुर्भाग्यवश तुर्क नौसेनापति ने कुछ उद्दंडतापूर्ण व्यवहार किया जिससे गुजरात के सुल्तान ने उससे अपना समर्थन वापस ले लिया। दो महीने तक घेरा डाले रहने के बाद दीव को मुक्त कराने के लिए एक जबर्दस्त पुर्तगाली बेड़े के आगमन की सूचना पाकर तुर्की बेड़ा वहाँ से हट गया।

आगे भी दो दशकों तक पुर्तगालियों पर तुर्कों का ख़तरा बना रहा। 1551 ई. में पेरी रईस ने, जिसे कालिकट के ज़मोरिन से मदद भी मिली थी, मस्कट और ओरमुज़ के पुर्तगाली किलों पर आक्रमण कर दिया। इस बीच पुर्तगालियों ने दमन के शासक के इस द्वीप को छीनकर अपनी स्थिति मज़बूत बना ली। अंतिम उस्मानिया नौसैनिक आक्रमण अली रईस के नेतृत्व में 1554 ई. में हुआ। इन आक्रमणों की विफलता के बाद तुर्कों का रुख बिलकुल बदल गया। 1566 ई. में उस्मानियों और पुर्तगालियों के बीच इस शर्त पर समझौता हो गया कि भारत के साथ मसालों के व्यापार में दोनों का हिस्सा होगा और अरब सागर में एक-दूसरे के खिलाफ़ कार्रवाई नहीं करेंगे। तुर्कों ने एक बार फिर अपना ध्यान यूरोप पर केंद्रित किया। इस समझौते से पुर्तगालियों के खिलाफ़ भारत में मुग़लों के उदीयमान साम्राज्य के साथ उस्मानियों के गठजोड़ का रास्ता बंद हो गया और इसके अपने कुछ आर्थिक परिणाम हुए जिनकी चर्चा आगे होगी।

भारतीय व्यापार, समाज और राजनीति पर पुर्तगाली प्रभाव

आरंभ से ही पुर्तगाली न तो हिंद महासागर के विस्तृत क्षेत्र की निगहबानी के लिए कोई इंतज़ाम कर पाए और न वहाँ व्यापार और व्यापारियों पर नियंत्रण रख पाए। उन्होंने जो करने की कोशिश की वह सिर्फ़ यह थी कि कुछ माल के व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त कर लें और कुछ के व्यापार पर कर वसूल करें। मसलन, काली मिर्च, शस्त्रास्त्रों, गोला-बारूद और लड़ाई में काम आने वाले घोड़ों के व्यापार पर पुर्तगाल के राजा के एकाधिकार की घोषणा कर दी गई। किसी भी देश को, यहाँ तक कि खानगी तौर पर पुर्तगालियों को भी इन चीज़ों का व्यापार करने की छूट नहीं थी। दूसरी वस्तुओं के व्यापार में लगे जहाजों को पुर्तगाली अधिकारियों से एक अनुमति पत्र लेना पड़ता था। पुर्तगालियों ने इस बात की भी कोशिश की कि पूर्व की ओर या अफ्रीका को जाने वाले सभी जहाज गोआ से होकर गुजरें और वहां पर सीमाशुल्क अदा करें।

इन नियमों को लागू करने के लिए पुर्तगालियों ने अपनी ही मर्ज़ी से अपने को यह अधिकार दे डाला कि वे ऐसे जहाज़ की तलाशी ले सकते हैं जिनके "निषिद्ध" व्यापार में लगे होने का संदेह है। तलाशी देने से इंकार करने वाले जहाज़ों को लड़ाई में लगा मानकर उन्हें डुबा दिया जा सकता था या उनपर कब्ज़ा कर लिया जा सकता था। ऐसे जहाज़ों में सवार स्त्री-पुरुषों के साथ गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता था। इससे बराबर झगड़े होते रहते थे। इससे शीघ्र ही पुर्तगालियों को एहसास हो गया कि इस तरह की पाबंदियाँ लगाने और रोक-टोक करने से उन्हें समुद्र में जितना लाभ होता है उससे कहीं ज़्यादा ज़मीन पर हानि होती है क्योंकि इस तरह का व्यवहार एशियाई समुद्रों के खुले व्यापार की परंपरा के विरुद्ध था और इसलिए सभी इसे नापसंद करते थे। यह सच है कि बहुत-से अरब और भारतीय जहाज़ों पर बंदूकें और सिपाही हुआ करते थे। लेकिन वह तो मुख्य रूप से जल-दस्युओं से सुरक्षा के लिए की गई व्यवस्था थी और यह बात जग जाहिर थी कि मालाबार और अरब के तटों पर जल-दस्युओं की भरमार थी।

पुर्तगालियों को एशियाई व्यापार तंत्र के प्रतिष्ठित क्रम को बदलने में कोई खास कामयाबी नहीं मिली। सबसे अधिक लाभदायक एशियाई व्यापार पर अरबों और गुजरातियों का वर्चस्व कायम रहा। इस व्यापार के तहत भारत से यहाँ के बने कपड़े और थोड़ा बहुत चावल तथा शक्कर बाहर भेजे जाते थे और बदले में भारत को दक्षिण पूर्व से मसाले, पश्चिम एशिया से सोना और घोड़े तथा चीन से रेशम और चीनी मिट्टी के बर्तन प्राप्त होते थे। आरंभ के एक-दो दशकों को छोड़कर पुर्तगाली यूरोप में काली मिर्च के व्यापार पर भी अपना एकाधिकार स्थापित नहीं कर पाए। सोलहवीं सदी का अंत होते-होते निकट-पूर्व और मिस्र के सागर से होकर उतनी ही काली मिर्च पहुँचने लगी जितनी पहले पहुँचती थी। इसका कारण कुछ तो यह था कि एशिया के उस काल के महान साम्राज्यों ने थलमार्ग से होने वाले व्यापार को सुरक्षा और बढ़ावा दिया और कुछ यह था कि गुजरातियों ने काली मिर्च की आपूर्ति का एक नया मार्ग निकाल लिया था जो सुमात्रा में अचिन से लक्षद्वीप तथा लालसागर होते हुए मिस्र तक पहुँचता था और यह ऐसा मार्ग था जिसपर पुर्तगाली नौसेना का कुछ बस नहीं चलता था।

पुर्तगाली गोआ को एशियाई व्यापार का प्रधान केंद्र भी नहीं बना सके, लेकिन अपनी कारगुज़ारियों से उन्होंने मालाबार तट के व्यापार पर तथा बंगाल के जलमार्ग से होने वाले व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव अवश्य डाला।

मगर जापान के साथ भारत का व्यापार आरंभ करने का श्रेय पुर्तगालियों को ही है। भारत वहाँ से ताँबे और चाँदी का आयात करता था। कुछ समय पश्चात जापान ने इस व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके अलावा पुर्तगालियों को यह दिखा देने का भी श्रेय प्राप्त है कि भारत जैसे सुविकसित देश के भी व्यापार में बाधा डालने के लिए नौसैनिक शक्ति का इस्तेमाल कैसे किया जा सकता था।

पुनर्जागरण काल से यूरोप में विकसित विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को भारत पहुँचाने वाले सेतु का भी काम पुर्तगाली नहीं कर पाए। इसका कारण किसी हद तक यह था कि खुद पुर्तगालियों पर पुनर्जागरण का उतना प्रभाव नहीं हुआ था जितना इटली और उत्तर यूरोप पर हुआ था। बल्कि बाद में तो जब जेसुइटों के नेतृत्व में कैथोलिक धार्मिक

प्रतिक्रिया ने ज़ोर पकड़ा तो पुर्तगालियों ने पुनर्जागरण की प्रवृत्तियों का विरोध तक करना शुरू कर दिया। अलबत्ता वे आलू, तंबाकू, मक्का, मूँगफली आदि कई मध्य अमरीकी कृषि उत्पादों को भारत तक पहुँचाकर यहाँ इनकी खेती की शुरुआत करने में सहायक रहे। लेकिन इनका व्यापक चलन मुगलों की शक्ति के उदय के बाद ही हुआ।

1565 ई. में बन्निहट्टि की लड़ाई में विजयनगर की पराजय के बाद दकनी राज्यों में पुर्तगालियों को दकनी तट से निकाल बाहर करने के लिए संगठित प्रयास करने का साहस जगा। जब तक बीजापुर को दक्षिण में विजयनगर से खतरा था, पुर्तगालियों से शांति बनाए रखना उसके लिए ज़रूरी था क्योंकि घोड़ों के व्यापार पर पुर्तगालियों का नियंत्रण था और यदि बीजापुर उनसे शत्रुता करता तो वे इस व्यापार का रुख विजयनगर के पक्ष में मोड़ सकते थे। 1570 ई. में बीजापुर के सुल्तान अली आदिलशाह ने अहमदनगर के सुल्तान के साथ एक समझौता किया। इस गठजोड़ में कालिकट के ज़मोरिन को भी शामिल कर लिया गया। मित्र शक्तियों ने पुर्तगालियों के प्रभुत्व क्षेत्र में घुसकर उनके ठिकानों पर हमला करने का निश्चय किया। आदिलशाह ने खुद ही सेना लेकर गोआ पर आक्रमण कर दिया। उधर निज़ामशाह ने चौल पर हमला किया। परंतु पुर्तगालियों की नौसेना समर्थित रक्षाव्यवस्था एक बार फिर भारतीय ताकतों के लिए बहुत मज़बूत साबित हुई। इस प्रकार भारतीय समुद्रों और दकनी तट के नियंता के रूप में पुर्तगालियों की स्थिति बरकरार रही।

अभ्यास

1. निम्नलिखित शब्दों और अवधारणाओं का अर्थ स्पष्ट कीजिए :
   तरफ, खालिसा, अफ़ाकी, मंडलम्, नाडु।
2. विजयनगर साम्राज्य की स्थापना कैसे हुई?
3. बहमनियों और विजयनगर राज्य के बीच संघर्ष के मुख्य कारण क्या थे? इस संघर्ष के क्या परिणाम हुए?
4. दकन के सांस्कृतिक विकास में फ़िरोज़ शाह बहमन के योगदान का वर्णन कीजिए।
5. प्रशासक और विद्या के संरक्षक के रूप में महमूद गवान के योगदान का वर्णन कीजिए।
6. क्या कृष्ण देवराय को विजयनगर का सबसे महान राजा कहना उचित है? अपने उत्तर के कारण बताइए?
7. तालिकोटा की लड़ाई के लिए ज़िम्मेदार घटनाओं और इस लड़ाई के परिणामों का वर्णन कीजिए।
8. विजयनगर साम्राज्य की प्रशासनिक संरचना का वर्णन कीजिए।
9. विजयनगर साम्राज्य की जनता की आर्थिक तथा सामाजिक अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
10. पुर्तगालियों के आगमन के पूर्व अन्य देशों के साथ भारत के व्यापारिक संबंधों का वर्णन कीजिए।
11. पुर्तगालियों को भारत में एक प्रबल शक्ति बनाने में अलबुकर्क ने क्या भूमिका निभाई?

12. तुर्कों और पुर्तगालियों के बीच संघर्ष होना क्यों अनिवार्य था। भारतीय व्यापार पर उसका क्या प्रभाव पड़ा?
13. भारत के मानचित्र की रूपरेखा पर निम्नलिखित क्षेत्रों को चिह्नित कीजिए :
    (क) विजयनगर साम्राज्य का विस्तार
    (ख) रायचूर और तुंगभद्रा दोआब
    (ग) हंपी, तालिकोटा, दौलताबाद, गोआ, कालिकट
14. "विजयनगर साम्राज्य में सांस्कृतिक विकास" पर एक परियोजना तैयार कीजिए। इस परियोजना में निम्नलिखित का समावेश किया जा सकता है:
    (क) स्थापत्य तथा साहित्य के क्षेत्र में योगदान पर आलेख तैयार करना।
    (ख) विजयनगर की यात्रा करने वाले यात्रियों के विवरणों के अंशों का संग्रह करना।
    (ग) मंदिरों आदि के फोटो और चित्रों का संग्रह करना।